प्रकाशन तिथि : 26 दिसम्बर 2016, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 35, अंक 6, कुल पृष्ठ 36

ISSN 2454 - 5163

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, कुन्दाद्री पर्वत, तीर्थ हल्ली (कर्नाटक)

वीतराग-विज्ञान (401)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10200**

करण शक्ति

धर्म का सच्चा साधन तो अपना शुद्ध चिदानन्द स्वभाव है उसका तो आश्रय नहीं लेता और व्यवहार के शुभराग आदि को ही साधन मानकर उसके अवलम्बन में रुक जाता है उस जीव को स्वभाव की रुचि नहीं है; किन्तु विकार की रुचि है। उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म कहाँ से होगा ? जिसे आत्मा के वीतरागी धर्म का प्रेम हो वह उससे विरुद्ध भावों का आदर नहीं करता। राग तो आत्मस्वभाव से विपरीत एवं हानिकारक है, तथापि जो उसे लाभकारी मानता है वह राग को साधन मानता है, उसे राग का प्रेम है, रागरहित स्वभाव का प्रेम नहीं है। जिसे राग का प्रेम है, वह राग रहित स्वभाव की साधना कैसे कर सकेगा ? जो सम्यग्ज्ञानी है वह राग को अपने स्वभाव से विरुद्ध जानता है, इसलिये उसमें तन्मय नहीं होता। अपने शुद्धस्वभाव को ही साधन जानकर उसमें एकता द्वारा राग का अभाव कर देता है। इसप्रकार स्वभाव साधन द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है। किसी बाह्य साधन के अवलम्बन बिना आत्मा स्वयं अपनी शक्ति से ही साधन होकर सिद्धि को साधता है। – आत्मप्रसिद्धि, पृष्ठ 523

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 35 (वीर नि. संवत् - 2543) 401 अंक : 6

चेतन अब धरि सहज...

चेतन अब धरि सहज समाधि, जातैं यह विनशै भवव्याधि।।टेक।।
मोह ठगौरी खायके रे, पर को आपा जान।
भूल निजातम ऋद्धि को तैं, पाये दुःख महान।।1।।
सादि अनादि निगोद दोय में, परयो कर्मवश जाय।
श्वास उसास मंझार तहां भव, मरन अठारह थाय।।2।।
काल अनन्त तहां यौं बीत्यो, जब भइ मन्द कषाय।
भूजल अनिल अनल पुन तरु ह्वै, काल असंख्य गमाय।।3।।
क्रम-क्रम निकसि कठिन तैं पाई, शंखादिक परजाय।
जल थल खरच होय अघ ठाने, तस वस श्वभ्र लहाय।।4।।
तित सागर लों बहु दुःख पाये, निकस कबहुँ नर थाय।
गर्भ जन्म शिशु तरुण वृद्ध दुःख, सहे कहे नहिं जाय।।5।।
कबहूँ किंचित पुण्यपाक तैं, चउविधि देव कहाय।
विषय आश मन त्रास लही तहं, मरन समय बिललाय।।6।।
यों अपार संसार जलधि में, भ्रम्यो अनन्ते काल।
'दौलत' अब निजभाव नाव चढ़ि, लै भवाब्धि की पाल।।7।।

– कविवर पण्डित दौलतरामजी

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा - कार्यक्रम -2017

दिन व दिनांक	नाम ग्रन्थ
शुक्रवार 27 जनवरी 2017	1. बालबोध पाठमाला भाग-1 (मौखिक) 2. जैन बालपोथी भाग-1 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-1 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-1 5. छहढाला (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध 7. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) 8. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (गोपालदासजी बरैया कृत) 9. विशारद प्रथम खण्ड (प्रथम वर्ष)
शनिवार 28 जनवरी 2017	1. बालबोध पाठमाला भाग-2 (मौखिक) 2. जैन बालपोथी भाग-2 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-2 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-2 5. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध 7. लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका (सोनगढ़) 8. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) 9. विशारद द्वितीय खण्ड (प्रथम वर्ष) 10. विशारद प्रथम खण्ड (द्वितीय वर्ष)
रविवार 29 जनवरी 2017	1. बालबोध पाठमाला भाग-3 (मौखिक) 2. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-3 3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पूर्ण) 4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (पूर्ण) 5. विशारद द्वितीय खण्ड (द्वितीय वर्ष)

नोट - (1) सुविधानुसार परीक्षा का समय प्रात: 9 से शाम 5 बजे के बीच कभी भी सैट कर सकते हैं।
(2) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।
(3) किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।
(4) बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 और जैन बालपोथी भाग-1 व 2 की परीक्षायें मौखिक में लेवें। शेष सभी विषयों की परीक्षायें लिखित में लेवें।

- प्रबंधक-परीक्षा बोर्ड

सम्पादकीय

कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन

मंगलाचरण

(दोहा)

कुन्दकुन्द आचार्य की गाथायें शत एक।
संग्रह अनुशीलन करूँ नमूँ सिद्ध प्रत्येक।।

आचार्य कुन्दकुन्द की द्विशताब्दी समारोह (१ अगस्त १९८७ से ३१ दिसम्बर १९८९ तक) के अवसर पर उनके पंचपरमागमों में से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण १०१ गाथायें चुनकर, उन्हें व्यवस्थित कर कुन्दकुन्द शतक का रूप दिया गया है।

इसमें मंगलाचरण के उपरान्त सर्वप्रथम पंचपरमेष्ठी और चार आराधनाओं के एकमात्र आराध्य, परमश्रद्धेय, परमज्ञेय और परमध्येय **निज भगवान आत्मा की शरण में जाने की बात कही गई है।**

तदुपरान्त क्रमश: भगवान आत्मा, मोक्षमार्ग, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

उनके ही संदर्भ में यथास्थान अहिंसा, कर्मसिद्धान्त, पुण्य-पाप, गुरुओं के संदर्भ में सद्ज्ञान आदि विषयों पर भी यथायोग्य प्रकाश डाला गया है।

सर्वत्र आचार्य कुन्दकुन्द के विचारों को ही प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य कुन्दकुन्द की सबसे बड़ी देन परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत, परमपारिणामिकभावस्वरूप उस आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट करना है कि जिसके दर्शन का नाम **सम्यग्दर्शन,** जिसमें अपनापन स्थापित करने का नाम **सम्यग्दर्शन;** जिसके जानने का नाम **सम्यग्ज्ञान,** निजरूप जानने का नाम **सम्यग्ज्ञान** और **जिसमें जमने-रमने और समा जाने का नाम सम्यक्चारित्र है।**

इस कुन्दकुन्द शतक के चुनाव में भी उसी त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा की मुख्यता रखी गयी है।

मंगलाचरण

(१)

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं।।

(हरिगीत)

सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र-वंदित कर्ममल निर्मलकरन।
वृषतीर्थ के करतार श्री वर्द्धमान जिन शत-शत नमन।।

मैं सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों से वंदित, घातियाकर्मों रूपी मल को धो डालनेवाले एवं धर्मतीर्थ के कर्त्ता तीर्थंकर भगवान वर्द्धमान को प्रणाम करता हूँ।

प्रश्न – आचार्य कुन्दकुन्द के काल में तो वर्द्धमान भगवान आठों ही कर्मों का नाश कर चुके थे, सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुके थे; फिर भी यहाँ उन्हें मात्र चार घाति कर्मों को धो डालनेवाला ही क्यों कहा है ?

उत्तर – जिस अवस्था का नाम वर्द्धमान है अथवा जिस अवस्था में उन्होंने धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया था; वह अवस्था अरहंत अवस्था ही थी और अरहंत अवस्था में मात्र चार घातिकर्मों का ही अभाव होता है। यही कारण है कि यहाँ उन्हें चार घातिया कर्मों को धो डालनेवाला कहा गया है।

तात्पर्य यह है कि यहाँ वर्द्धमान भगवान की तीर्थंकर पद में स्थित अरहंत अवस्था का ही स्मरण किया गया है, उसे ही नमस्कार किया गया है; क्योंकि उन्होंने अरहंत अवस्था में ही वर्तमान धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया था और अभी उनका ही शासनकाल चल रहा है।

इस गाथा का भाव आचार्य अमृतचन्द्रदेव आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

इस युग के अन्तिम या चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमानस्वामी को वर्तमान

तीर्थ के नायक होने से आचार्य कुन्दकुन्द सर्वप्रथम नमस्कार करते हुए कहते हैं कि **उर्ध्वलोक के अधिपति सुरेन्द्रों, अधोलोक के अधिपति असुरेन्द्रों और मध्यलोक के अधिपति नरेन्द्रों से पूजित होने से जो तीन लोक के एकमात्र गुरु हैं; घातिकर्मरूपी मल को धो डालने से जिनमें जगत का उपकार करनेरूप अनंतशक्तिसम्पन्न परमेश्वरता प्रगट हुई है; जो तीर्थंकर होने से योगियों सहित सभी का कल्याण करने में समर्थ हैं, धर्म के कर्ता होने से अपनी शुद्धस्वरूप परिणति के कर्ता हैं और जिनका नाम ग्रहण भी परमहितकारी है– उन श्री परमभट्टारक, महादेवाधिदेव, परमेश्वर, परमपूज्य वर्द्धमानस्वामी को नमस्कार करता हूँ।**

देखो, यहाँ अरहंत भगवान को परमभट्टारक कहा है। अरहंत भगवान परमभट्टारक हैं, गणधरदेव भट्टारक हैं और अकलंकदेव जैसे समर्थ आचार्यों के लिए 'भट्ट' शब्द का प्रयोग किया जाता है, उन्हें भट्टाकलंकदेव कहा जाता है। इसप्रकार हम देखते हैं कि भट्ट, भट्टारक, परमभट्टारक पद बड़े ही महान पद हैं; जिनका आज कितना अवमूल्यन हो गया है।

प्रश्न – यहाँ वर्द्धमान भगवान को तीन लोक का गुरु कहा गया है; किन्तु लोक में हजारों लोग ऐसे हैं, जो उन्हें नहीं मानते हैं, उनका विरोध करते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें तीन लोक का गुरु कैसे माना जा सकता है?

उत्तर – जिसप्रकार भारत के प्रधानमंत्री जिस समझौते को स्वीकार कर लेते हैं, जिस समझौते पर हस्ताक्षर कर देते हैं; वह समझौता सम्पूर्ण भारतवर्ष को मान्य है – ऐसा मान लिया जाता है।

उसीप्रकार तीन लोक में विद्यमान शत इन्द्रों द्वारा पूज्य हो जाने पर, शत इन्द्रों के गुरु हो जाने पर तीर्थंकर तीन लोक के गुरु मान लिये जाते हैं। इसप्रकार **ऊर्ध्वलोक के अधिपति सुरेन्द्रों, मध्यलोक के अधिपति नरेन्द्रों और अधोलोक के अधिपति असुरेन्द्रों द्वारा गुरु मान लेने पर भगवान महावीर भी तीन लोक के गुरु मान लिये गये हैं।**

आतमा ही है शरण

(२-३)

अरूहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।।
सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।।

(हरिगीत)

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठि पण।
सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण।।
सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण।
सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण।।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु – ये पंच परमेष्ठी भगवान आत्मा की ही अवस्थाएँ हैं; इसलिए **मेरे लिए तो एक भगवान आत्मा ही शरण है।**

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप – ये चार आराधनाएँ भी आत्मा की ही अवस्थाएँ हैं; इसलिए **मेरे लिए तो एक आत्मा ही शरण है।**

तात्पर्य यह है कि निश्चय से विचार करें तो अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुपद एकमात्र निज भगवान आत्मा की ही अवस्थायें हैं; अत: एकमात्र निज आत्मा ही निश्चय शरण है, वास्तविक शरण है; क्योंकि **निज आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र एवं सम्यक्तप की प्राप्ति होती है।**

कुन्दकुन्द शतक में संकलित ये दूसरी व तीसरी गाथायें **आचार्य कुन्दकुन्द के अष्टपाहुड़ के मोक्षपाहुड़ की १०४वीं एवं १०५वीं** गाथाएँ हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द की ये गाथाएँ अपने आप में अद्भुत महामंत्र हैं।

इनमें सरल-सुबोध भाषा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है।

उक्त गाथाओं की पहली ही पंक्ति में पंचपरमेष्ठी का स्मरण किया गया है। हमारे सर्वाधिक प्रिय महामंत्र णमोकार मंत्र में भी पंचपरमेष्ठी को ही नमस्कार किया है।

णमोकार महामंत्र में ऐसी क्या विशेषता है कि जिसके कारण प्रत्येक जैन प्रतिदिन प्रात:काल इसे एक सौ आठ बार नहीं तो कम से कम नौ बार तो बोलता ही है। संपूर्ण जैनसमाज में समानरूप से मान्य यह महामंत्र प्रत्येक जैन को संकटकाल में तो याद आता ही है, प्रत्येक शुभकार्य के आरम्भ में भी इसका स्मरण किया जाता है। प्रत्येक पालक अपने बालकों को दो-तीन वर्ष की अवस्था में ही इस महामंत्र को सिखा देता है। इसप्रकार यह जैन समाज के बच्चे-बच्चे को याद है।

इसके अर्थ पर जब हम विचार करते हैं तो एक बात अत्यन्त स्पष्ट रूप से ज्ञात होती है कि इसमें पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा गया है।

णमोकार महामंत्र का सीधा-सादा अर्थ इसप्रकार है –

''अरहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक के सर्वसाधुओं को नमस्कार हो।''

– ऐसा होने पर भी इसकी इतनी लोकप्रियता क्यों है ?

गम्भीरता से विचार करने पर एक बात अत्यन्त स्पष्टरूप से ज्ञात होती है कि इसमें किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया गया है, **अपितु उन सभी महान आत्माओं का स्मरण किया गया है, जिन्होंने निज भगवान आत्मा की आराधना कर पंचपरमेष्ठी पद प्राप्त किया है, कर रहे हैं या भविष्य में करेंगे।**

व्यक्तिविशेष की महिमा से सम्प्रदाय पनपते हैं और गुणों की महिमा से धर्म की वृद्धि होती है। इसीलिए तो हमारे यहाँ कहा गया है कि –

जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो।।

जो सर्वज्ञ है, वीतरागी है और हितोपदेशी है; हम तो उसके ही चरणों में सिर नवाते हैं, वह चाहे महावीर हो, चाहे बुद्ध हो, चाहे जिन हो, चाहे हरि हो, चाहे हर हो, चाहे ब्रह्मा हो। चाहे कोई भी हो, पर **यदि वह सर्वज्ञ-वीतरागी है तो हमारे लिए वंदनीय है, प्रात:स्मरणीय है।**

व्यक्तिविशेष की आराधना करनेवाला धर्म सार्वकालिक नहीं हो सकता, सार्वभौमिक नहीं हो सकता और सार्वजनिक भी नहीं हो सकता।

व्यक्तिविशेष अनादि-अनन्त नहीं होने से सार्वकालिक नहीं होते, क्षेत्रविशेष से संबंधित होने से सार्वभौमिक नहीं होते और जातिविशेष से संबंधित होने से सार्वजनिक नहीं हो सकते।

पंचपरमेष्ठी अनादि से होते आये हैं और अनन्त काल तक होते रहेंगे, अत: **सार्वकालिक** हैं; ढाई द्वीप में **सर्वत्र ही होते हैं,** अत: **सार्वभौमिक** हैं और जातिविशेष से संबंधित न होने से **सार्वजनिक** भी हैं।

पंचपरमेष्ठी का आराधक होने के कारण ही **जैनदर्शन सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनिक है।**

जैनदर्शन के अनुसार निज भगवान आत्मा की साधना करनेवाले ही **साधु** कहलाते हैं और साधुओं में ही जो वरिष्ठ होते हैं, उन्हें **आचार्य** और **उपाध्याय** पद प्राप्त होते हैं। आत्मा की साधना से पूर्णता को प्राप्त पुरुष ही **अरिहंत और सिद्ध** बनते हैं। इसप्रकार आत्मसाधक और अरिहंत व सिद्ध ही पंचपरमेष्ठी हैं, जिन्हें इस णमोकार महामंत्र में नमस्कार किया गया है।

इस णमोकार महामंत्र की दूसरी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि **इसमें किसी से कुछ माँग नहीं की गई है, इसमें भिखारीपन नहीं है; पूर्णत:**

नि:स्वार्थभाव से पंचपरमेष्ठी के प्रति भक्तिभाव प्रकट किया गया है, उसके बदले में कुछ भी चाहा नहीं गया है।

जगत के अन्य जितने भी मंत्र हैं, उन सभी में कुछ न कुछ माँग अवश्य की जाती रही है और कुछ नहीं तो यही कहा जायेगा कि '**सर्व शांतिं कुरु-कुरु स्वाहा।**' यद्यपि इसमें व्यक्तिगतरूप से कुछ भी नहीं चाहा गया है, सबके लिए पूर्ण शान्ति की कामना की गई है, जो बहुत अच्छी बात है; क्योंकि जो कुछ चाहा गया है, वह सबके लिए चाहा गया है, सबके हित के लिए चाहा गया है; विषय-कषाय की पूर्ति की कामना नहीं की गई है, शांति की ही कामना की गई है, तथापि चाहा तो गया ही है, माँग तो की ही गई है।

यह तो आप जानते ही हैं कि भारतीय संस्कृति में माँगने को सर्वाधिक बुरा बताया गया है। कहा गया है कि –

रहिमन वे नर मर गये, जो नर माँगन जाँय।
उनसे पहले वे मरे, जिन-मुख निकसत नाँहि।।

उक्त छन्द में माँगनेवालों को मरे हुए के समान बताया गया है। कहा गया है कि जो किसी के दरवाजे पर माँगने जाते हैं, समझ लो वे लोग मर ही गये हैं; क्योंकि माँगना स्वाभिमान खोये बिना संभव नहीं है और **जिनका स्वाभिमान समाप्त हो गया है, वे जिन्दा होकर भी मृतक समान ही हैं।**

इसमें एक बात और भी कही गई है कि माँगनेवाले तो मृतक समान हैं ही, पर **माँगने पर मना करनेवाले तो उनसे भी गये बीते हैं। उन्हें तो माँगनेवालों से भी पहले मर गया समझो।**

माँगने पर तो विष्णु भगवान को भी बावनिया बनना पड़ा था, फिर औरों की तो बात ही क्या है ? ऐसी भारतीय संस्कृति में कि जिसमें माँगने को इतना हीन समझा गया हो; उसमें, **जिसमें कुछ भी माँग प्रस्तुत न की गई हो, वह मंत्र महामंत्र बन गया तो आश्चर्य की बात क्या है ?**

कुछ लोग कहते हैं कि णमोकार महामंत्र में बड़ी ही उदारता से लोक के सभी साधुओं को नमस्कार किया गया है। उदारता की व्याख्या करते हुए वे यह कहने से भी नहीं चूकते हैं कि जैन साधु और जैनेतर साधुओं को इसमें बिना भेदभाव किये समानरूप से नमस्कार किया गया है।

क्या '**णमो लोए सव्वसाहूणं**' का सचमुच यही भाव है ? या फिर जैनेतरों को प्रसन्न करने के लिए यह कह दिया जाता है।

यद्यपि यह बात सत्य है कि इसमें किसी साधु विशेष का नाम लेकर नमस्कार नहीं किया गया है, किसी सम्प्रदाय विशेष का भी नाम नहीं लिया गया है, किसी धर्म का भी नाम नहीं लिया गया है; तथापि इसमें वे ही साधुगण आते हैं, जो पंचपरमेष्ठी में शामिल हैं, अट्ठाईस मूलगुणों के धारी हैं; जो जैन परिभाषा के अनुसार छठवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलनेवाले हैं या उससे भी ऊपर हैं।

अत: यह सुनिश्चित है कि 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में वीतरागी भावलिंगी जैन संत ही आते हैं, क्योंकि जैन परिभाषा के अनुसार वे ही लोक के सर्वसाधु हैं, अन्य नहीं।

सामान्यरूप से पंचपरमेष्ठी का स्मरण करना, नमस्कार करना प्रत्येक जैन का प्राथमिक कर्त्तव्य है, जिसे प्रत्येक जैन प्रतिदिन णमोकार महामंत्र के जाप के माध्यम से निभाता ही है और निभाना भी चाहिए।

जिनसे हमारा उपकार न हुआ हो, जिनसे हमारा साक्षात् परिचय भी न हो; पर जो भी परमपद में स्थित हैं, पंचपरमेष्ठी में आते हैं; वे सभी हमारे लिए समानरूप से पूज्य हैं, उनमें भेदभाव करना उचित नहीं है। उन सभी को समानरूप से स्मरण करना ही '**णमो लोए सव्वसाहूणं**' पद का मूल प्रयोजन है।

हमारे प्रत्यक्ष उपकारी तो वे ज्ञानी गृहस्थ धर्मात्मा भी हो सकते हैं, जो अभी पंचपरमेष्ठी में शामिल नहीं हैं, वे भी पूज्य तो हैं ही, पर पंच-परमेष्ठी के समान पूज्य नहीं।

अष्टद्रव्य से पूज्य तो पंचपरमेष्ठी ही हैं। उन्हीं को णमोकार महामंत्र में स्थान प्राप्त है, ज्ञानी गृहस्थ धर्मात्माओं को नहीं।

इस संदर्भ में एक बात और भी उल्लेखनीय है कि णमोकार महामंत्र की महिमा बतानेवाली गाथा में णमोकार मंत्र को सब पापों का नाश करनेवाला कहा गया है। वह गाथा मूलत: इसप्रकार है –

''ऐसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होहि मंगलम्॥

यह नमस्कार महामंत्र सब पापों का नाश करनेवाला और सब मंगलों में पहला मंगल है।''

इस गाथा के अर्थ समझने में भी भारी भूल हो जाती है। सब पापों का नाश करने का अर्थ यह समझा जाता है कि **भूतकाल में हमने जो भी पाप किए हैं, इस महामंत्र के उच्चारण मात्र से उन सब पापों का नाश बिना फल दिए ही हो जाता है।**

यदि ऐसा है तो फिर हम सभी लोग प्रतिदिन इसे बोलते ही हैं, अत: हमारे पुराने पापों का नाश हो जाना चाहिए था, पर ऐसा तो दिखाई नहीं देता है, क्योंकि प्रतिदिन णमोकार महामंत्र बोलने वालों के भी पाप का उदय देखा जाता है, पाप के उदय में उन्हें अनेक प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है। यह सब हम प्रतिदिन देखते हैं, प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

इससे बचने के लिए यदि यह कहा जाये कि हमें इस पर पक्का भरोसा नहीं है, विश्वास नहीं है; अत: हमारे पापों का नाश नहीं होता है।

अरे भाई, न सही हमें विश्वास, पर क्या किसी को भी विश्वास नहीं है ? लाखों लोग प्रतिदिन णमोकार महामंत्र बोलते हैं और लगभग सभी के थोड़ा-बहुत पाप का उदय देखने में आता ही है। पाप के उदय में प्रतिकूलतायें भोगते हुए हम सभी को सदा प्रत्यक्ष देखते ही हैं।

जाने दो णमोकार महामंत्र बोलनेवालों को, पर णमोकार महामंत्र में

जिन्हें नमस्कार किया गया है, उन्हें भी तो पापोदय देखने में आता है। **हमारे वीतरागी सन्तों पर उपसर्ग होते हैं, वे सभी पापोदय के ही तो परिणाम हैं। जब उनके ही पापों का नाश नहीं हुआ तो उनका नाम लेने से हमारे पापों का नाश कैसे होगा ?**

यह एक ऐसा प्रश्न है कि जो प्रत्येक विचारक के हृदय को आंदोलित करता है। इस पर गंभीरता से विचार करते हैं तो यही प्रतीत होता है कि **जो व्यक्ति जिस समय इस महामंत्र का भावपूर्वक, समझपूर्वक स्मरण करता है, उसके हृदय में उस समय कोई पापभाव उत्पन्न ही नहीं होता, यही सब पापों का नाश होना है।**

प्रश्न – यदि 'उस समय पापभाव उत्पन्न नहीं होते' मात्र इतना ही आशय है तो फिर सब पापों के नाश की बात क्यों कही गई है ?

उत्तर – पाप अनेक प्रकार के हैं; हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह। ये सभी पापभाव णमोकार मंत्र के स्मरण के काल में उत्पन्न नहीं होते – इसकारण ही 'सब' शब्द का प्रयोग है। यहाँ 'सब' शब्द का अर्थ वर्तमान में उत्पन्न होनेवाले हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के परिणाम ही हैं। इसमें भूतकाल में किये गये पापों से कोई तात्पर्य नहीं है।

यदि भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी द्रव्य-पाप एवं भाव-पाप केवल णमोकार मंत्र के बोलने मात्र से नष्ट हो जाते होते तो **फिर आत्मध्यानरूप तप की क्या आवश्यकता थी, उपशम श्रेणी-क्षपक श्रेणी माँडने की क्या आवश्यकता थी ?** सभी कर्मों का नाश णमोकार मंत्र के बोलने से ही हो जाता।

इसीप्रकार यदि णमोकार मंत्र बोलने मात्र से ही सभी पाप नाश को प्राप्त हो जाते तो फिर कोई पाप करने से डरता ही क्यों ? दिनभर जी-भरकर पाप करो और सायं को णमोकार मंत्र बोल लो, सब पापों का नाश हो ही जायेगा। इसप्रकार तो यह महामंत्र पापियों को अभयदान देनेवाला हो जायेगा। अत: यही सही है कि **जिस समय हम णमोकार मंत्र बोलते हैं,**

उस समय कोई पापभाव हमारे मन में भी उत्पन्न नहीं होता। यह बात अनुभवसिद्ध भी है; क्योंकि जब-जब भी हमारा मन पंचपरमेष्ठी के स्मरण-चिन्तन में रहता है, तबतक कोई पापभाव मन में नहीं आता, परिणाम निर्मल ही रहते हैं।

इस पर यदि कोई कहे कि णमोकार महामंत्र के स्मरण से भूतकाल के पापों का नाश नहीं होता तो णमोकार मंत्र बोलने से लाभ ही क्या है? क्या अकेले वर्तमान पापभावों से बचने के लिए ही इसका जाप करें? क्या इस महामंत्र का इतना ही माहात्म्य है ? इस भाव तो हमें यह नहीं पुसाता।

अरे भाई, यह बात तो ऐसी ही हुई कि जैसे किसी सेठ ने सायं ६ बजे से प्रात: ६ बजे तक के लिए रात की चौकीदारी पर एक चौकीदार रखा, पर उसके यहाँ दिन के १२ बजे चोरी हो गई। तब वह कहने लगा कि जब दिन को १२ बजे चोरी हो गई तो चौकीदार रखने से क्या लाभ है ? हटाओ इस चौकीदार को।

पर भाई, क्या यह सोचना सही है ? अरे रात का चौकीदार रखा है तो रात को चोरी नहीं हुई, भले ही दिन को हो गई। इससे अच्छी चौकीदारी और क्या हो सकती है कि चौकीदार के कारण चोर रात को तो चोरी न कर सका, पर दिन को चोरी करने में सफल हो गया। इससे तो चौकीदार की उपयोगिता ही सिद्ध हुई है। यदि आप चाहते हैं कि भविष्य में दिन को भी चोरी न हो तो एक चौकीदार दिन को भी रखो।

इसीप्रकार जब यह सिद्ध हो गया कि जिस समय णमोकार महामंत्र का स्मरण होता रहा, उस समय पापबंध नहीं हुआ; तब यदि हम चाहते हैं कि हमे कभी भी पापबंध न हो तो हमें सदा ही पंचपरमेष्ठी का स्मरण रखना चाहिए। यही सद्‌विवेक है, सच्ची समझ है।

जिस कार्य का जितना फल है, उससे अधिक मान लेने से तो कुछ कार्य सिद्ध होनेवाला नहीं है।

णमोकार महामंत्र में कुछ माँगा नहीं जाता है, तथापि उसके स्मरण से

सभी पापभावों से बच जाते हैं। यह सब पंचपरमेष्ठी के स्मरण का ही प्रताप है। आचार्य कुन्दकुन्द की उक्त गाथा में भी बिना किसी माँग के पंचपरमेष्ठी का स्मरण किया गया है। इसलिए मैं कहता हूँ कि यह गाथा आचार्य कुन्दकुन्द का णमोकार महामंत्र है।

यद्यपि णमोकार महामंत्र में कुछ माँगा नहीं गया है, पर उसके बाद आनेवाली पंक्तियों में अरहंतादिक की शरण में जाने की बात अवश्य कही गई है। कहा गया है कि –

''चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।''

उक्त पंक्तियों में अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली भगवान द्वारा कहे गये धर्म की शरण में जाने की बात कही गयी है। शरण में जाने की बात के माध्यम से शरण की माँग तो कर ही ली है, पर आचार्य कुन्दकुन्द ने तो निज भगवान आत्मा की शरण में जाने की बात की है।

''तम्हा आदा हु मे सरणम्'' कहकर वे निज आत्मा की शरण में जाने की ही बात करते हैं। यदि पंचपरमेष्ठी से कुछ मांग न करने के कारण ही णमोकार महामंत्र महान है तो फिर आचार्य कुन्दकुन्द की उक्त गाथा निश्चितरूप से महान है।

इस गाथा में वे आत्मा की शरण में जाने की बात को सयुक्ति सिद्ध करते हैं। इस बात की चर्चा करने के पूर्व में णमोकार मंत्र के बाद आने वाले मंगल, उत्तम और शरण बतानेवाले पाठ के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।

णमोकार महामंत्र में तो पाँचों ही परमेष्ठियों का स्मरण किया गया है; पर मंगल, उत्तम और शरण बताते समय आचार्य और उपाध्याय को छोड़ दिया है। क्या आप जानते हैं कि ऐसा क्यों किया गया है ?

मुक्ति प्राप्त करने के लिए साधु होना अनिवार्य है, अरहंत होना अनिवार्य है, सिद्ध होना भी अनिवार्य है, क्योंकि सिद्ध होना ही तो मुक्ति प्राप्त करना

है; पर मुक्त होने के लिए आचार्य और उपाध्याय होना अनिवार्य नहीं है। यही कारण है कि मंगल, उत्तम और शरण की चर्चा में उन्हें शामिल नहीं किया गया है।

न केवल इतनी ही बात है कि मुक्ति के लिए आचार्यपद आवश्यक नहीं है, अपितु बात तो यहाँ तक है कि आचार्य जबतक आचार्यपद पर हैं, तबतक उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। उनके अनेक साधु शिष्यों को केवलज्ञान हो जाता है, पर उन्हें नहीं होता। **जब वे आचार्यपद छोड़कर सामान्य साधुपद धारण करते हैं और आत्मसन्मुख होते हैं, तभी केवलज्ञान होता है।**

यद्यपि यह सत्य है कि आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठियों को सर्व साधुओं में शामिल कर लिया गया है, उन्हें छोड़ा नहीं गया है; तथापि उन्हें गौण तो किया ही गया है और गौण करने का एकमात्र कारण मुक्ति प्राप्त करने में उक्त पदों की कोई उपयोगिता नहीं होना ही है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि साधुओं में आचार्य उपाध्याय को शामिल करने के स्थान पर आचार्यों में साधुओं को शामिल करना चाहिए; क्योंकि आचार्य बड़े हैं, साधुओं के भी गुरु हैं, उनके भी पूज्य हैं। अत: आचार्यों के नाम का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए था और साधुओं को उसमें शामिल कर लेना चाहिए था।

अरे भाई, यहाँ छोटे-बड़े का सवाल नहीं है। बात यह है कि आचार्य परमेष्ठी साधु परमेष्ठी भी हैं ही, पर साधु परमेष्ठी आचार्य नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि आचार्य परमेष्ठी अपने ३६ मूलगुण के धारी तो होते ही हैं तथा साधुओं के २८ मूलगुण भी उनके होते ही हैं, किन्तु साधु मात्र २८ मूलगुणों के ही धारी होते हैं, उनके आचार्यों के ३६ मूलगुण नहीं होते।

बात यह है कि **आचार्य, साधु और आचार्य दोनों एक साथ हैं, पर साधु मात्र साधु ही हैं; अत: उनका समावेश आचार्य पद में संभव नहीं है।**

(क्रमश:)

छहढाला प्रवचन

निजात्म-ध्यान की प्रेरणा

पुण्य-पाप फल मांहि, हरख बिलखौं मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।।
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ।।९।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

चैतन्यतत्त्व का संयोग के साथ क्या संबंध है ? पर-संयोग के साथ एकता की कल्पना से जीव दुःखी है। उस संयोग में सुख-दुःख मानना तो कल्पनामात्र है। वास्तव में जीव को संयोग का नहीं; किन्तु अपनी परिणति का वेदन है।

''सम्यग्दृष्टि नरक में भी सुखी और मिथ्यादृष्टि देवलोक में भी दुःखी'' – ऐसा संयोग की तरफ से कहा जाता है; परन्तु वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि अपनी निर्मल परिणति में सुखी है और मिथ्यादृष्टि अपनी मिथ्यापरिणति में दुःखी है। बाहर का सुख-दुःख जीव को नहीं है।

इसलिए हे भाई ! पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक अथवा सुख-दुःख न मानकर, उन दोनों से पार ऐसे चिदानन्द तत्त्व को लक्ष्य में लेकर समभाव से उसका ध्यान करो, यही सुखी होने की रीति है।

सब जीवों को सुख की चाह है। वीतराग-विज्ञान सुख का कारण है और उसकी ही यह बात है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी सन्मुखता से उसको जानकर उसमें एकाग्र होने पर अपूर्व शान्ति होती है और दुःख के कारणरूप पुण्य-पाप कर्म बंधे थे, उनके फलस्वरूप बाहर में जो अनुकूल-

प्रतिकूल संयोग वर्तमान में प्राप्त हुए उनको पुद्गल पर्याय जानो अर्थात् ज्ञान से भिन्न जानो और उनमें हर्ष-शोक मत करो। अनेकविध पुद्गल पर्यायें उपजती और नष्ट हो जाती हैं, वह पुद्गल कभी देवपर्याय के शरीररूप बनता है, वह पर्याय नष्ट होकर पुनः वही पुद्गल कभी नरक में नारकी के शरीररूप बन जाते हैं। यह सब पुद्गल की लीला है। मैं उन सभी पुद्गल पर्यायों से भिन्न चैतन्यस्वरूप हूँ – ऐसा जानो। अन्य सभी लाख काम छोड़कर भी ऐसे आत्मा को अन्तर में ध्यावो, वही मोक्ष दातार है।

पुण्य-पाप की उत्पत्ति ज्ञान में नहीं होती, उनकी उत्पत्ति तो पराश्रित विकार में से होती है और उसका फल पुद्गल-संयोग है, जो जीव से भिन्न है। शुभकर्म के फल में भी जीव को धर्म या सुख नहीं मिलता, कर्म का फल तो संसार ही है। इसप्रकार पुण्य-पाप का स्वरूप उनके फन्द रहित ज्ञानस्वरूप आत्मा को सदा ध्यावो। अहा ! धर्मी की दशा में ज्ञान और राग भिन्न पड़ गया है। शुभराग से पुण्य और अशुभ से पाप – इनमें ज्ञान कहीं नही आया, ज्ञान अर्थात् धर्म तो उन दोनों से भिन्न वस्तु है। ऐसे ज्ञानस्वरूप का अनुभव ही सारभूत है – मोक्षमार्ग है।

पुण्य या पाप सार नहीं है, वे तो असार संसार के मार्ग हैं। पुण्य मोक्षमार्ग नहीं है; अपितु कर्मबन्ध है, पुद्गल संयोग जीव को सुख-दुःख नहीं देते। संयोग के समय भी संयोग तो ज्ञान से भिन्न ही रहता है। हे भव्य ! ऐसा मनुष्यपना पाकर करोड़ों उपायों से भी तू सम्यग्ज्ञान प्रकट कर।

देखो, सम्यग्ज्ञान के लिए इसी ग्रन्थ में बारबार कितनी प्रेरणा दी है।

जग जाल भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग।

– दूसरी ढाल, छन्द १५

आपरूप को जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है।

– तीसरी ढाल, छन्द २

दौल ! समझ सुन चेत सयाने काल वृथा मत खौवे,
यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहिं होवे।

– तीसरी ढाल, छन्द १७

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।

– चौथी ढाल, छन्द ४

पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

– चौथी ढाल, छन्द ५

संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लख लीजे।

– चौथी ढाल, छन्द ६

कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो।

– चौथी ढाल, छन्द ७

जे पूरब शिव गए जाहिं अरु आगे जैहैं,
सो सब महिमा ज्ञान तनी मुनिनाथ कहे हैं।
विषयचाह-दवदाह जगतजन अरनि दझावै,
तास उपाय न आन ज्ञान घनघान बुझावै।

– चौथी ढाल, छन्द ८

लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ,
तोरि सकल जग द्वन्द-फन्द नित आतम ध्यावो।

– चौथी ढाल, छन्द ९

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद पायो अनंत बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ।।

– पाँचवीं ढाल, छन्द १३

अब दौल ! होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै।

– छठवीं ढाल, छन्द १५

इसप्रकार छहढाला में बारम्बार भेदज्ञान की प्रेरणा दी गई है। अमृतचन्द्र स्वामी भी भेदज्ञान की महिमा बताकर समयसार में कहते हैं कि भेदज्ञान से ही सिद्धि प्राप्त होती है, इसलिए केवलज्ञान होने तक अछिन्न धारा से इस भेदज्ञान को भावो।

हे भव्य ! तू भेदज्ञान से अन्तर में आत्मा को कर्म से भिन्न जान। शुभाशुभ राग से भी अपने ज्ञानतत्त्व को भिन्न जान। पुण्य-पाप आत्मा की सन्मुखता से नहीं होते, वे तो परलक्ष से, शुभाशुभ भाव से होते हैं। आत्मा की सन्मुखता से तो सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव प्रकट होते हैं और वे शुद्धभाव पुण्य-पाप बन्ध के कारण नहीं होते, वे तो कर्म छेदन के कारण हैं।

पुण्य-पापकर्म के कारण स्वभाव से विरुद्ध ऐसे राग-द्वेषभाव हैं। पुण्य-पाप स्वयं पुद्गलरूप हैं, जीवरूप नहीं और उनके फल में जो बाहर की सामग्री मिलती है, वह भी आत्मा से भिन्न है। बाह्य सामग्री तो जड़ है। वह चेतनस्वरूप आत्मा को छूती भी नहीं है।

इसप्रकार शुभभाव, पुण्य-पाप और उनके फलरूप बाह्य सुख-दुख यह तीनों द्वन्द आत्मा के ज्ञानस्वभाव से भिन्न हैं। ज्ञानस्वभाव की ओर झुककर एकाग्र हुआ भाव शुभाशुभ का कारण नहीं होता, इसलिए ऐसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय करो और पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक छोड़ो – यह लाख बात की बात है और करोड़ों प्रयत्नों से भी यही कार्य करने योग्य है। इस उपाय से ही आत्मा जगत के द्वन्द-फन्द से छूटकर सारभूत मोक्ष सुख का धनी होता है।

जिसे धर्म करना हो और सुखी होना हो – ऐसे मोक्षार्थी को सर्वप्रथम क्या करना चाहिए ? तो कहते हैं कि करोड़ों उपायों से प्रथम में प्रथम स्वपर का भेदज्ञान करना चाहिए।

पुण्य के फल में धन का ढेर या समाज में बड़प्पन मिले तो उससे आत्मा को लाभ नहीं हो जाता, ये सब मिलने से आत्मा का काम नहीं हो जाता।

आत्मा के हित के लिए कोई संयोग या उसके लक्ष्य से होनेवाला भाव कुछ काम नहीं आता।

मैं ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा हूँ – इसप्रकार अपनी वस्तु को पहिचानकर यदि सम्यग्ज्ञान प्रकट करे तो उससे आत्मा का परम हित है और वह ज्ञान आत्मा की वस्तु होने से आत्मा के साथ अचल रहता है, उसका वियोग नहीं होता। इसके विपरीत पुण्य के फलरूप संयोग तो छूट जाते हैं।

अरे जीव ! तू विवेक तो कर कि कौन-सी वस्तु मिलने से तेरा हित है? धन स्त्री आदि का संयोग अथवा भगवान या गुरु का संयोग – तेरा हित नहीं कर सकते। तू स्वयं संयोग से भिन्न आत्मा का ज्ञान कर, वह ज्ञान ही तुझे हितरूप है। श्रीगुरु भी तुझे ऐसा ही करने का उपदेश देते हैं और ऐसा करना ही श्री देव-गुरु-शास्त्र की परमार्थ विनय है। **(क्रमशः)**

ध्यान रहे !

ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन स्थित पंचतीर्थ जिनालय का चतुर्थ वार्षिकोत्सव दिनांक 26-28 फरवरी 2017 तक आयोजित हो रहा है। विस्तृत कार्यक्रम अगले अंक में दिया जायेगा।

2017 का प्रशिक्षण शिविर खनियांधाना में...

51वाँ आध्यात्मिक शिक्षण प्रशिक्षण शिविर रविवार, दिनांक 21 मई 2017 से बुधवार दिनांक 7 जून 2017 तक खनियांधाना-शिवपुरी (म.प्र.) में आयोजित होने जा रहा है। सभी साधर्मीजन शिविर में पधारकर अवश्य लाभ लें।

नियमसार प्रवचन –

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 74वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है –

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।
णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति।।७४।।

(हरिगीत)

रतनत्रय संयुक्त अर आकांक्षाओं से रहित।
तत्त्वार्थ के उपदेश में जो शूर वे पाठक मुनी।।७४।।

रत्नत्रय से संयुक्त, जिनेन्द्रकथित पदार्थों को समझाने में शूरवीर और निकांक्ष भावनावाले मुनिराज उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं।

(गतांक से आगे....)

अब, **'णमो उवज्झायाणं'** का स्वरूप कहते हैं। उपाध्याय कैसे होते हैं? अविचलित अखण्ड अद्वैत परमचिद्रूप में श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठानरूप (चारित्ररूप) शुद्धनिश्चय-स्वभावरत्नत्रयवाले उपाध्याय होते हैं। जो निश्चयरत्नत्रय संयुक्त न हों, वे उपाध्याय नहीं कहे जाते।

धन्य है भावलिंगी साधु की दशा, जिसे **'णमो लोए सव्व साहूणं'** बोलते समय गणधरदेव का भी नमस्कार पहुँचता है। नमस्कार का विकल्प उठे, उसके गणधरदेव स्वामी नहीं हैं। गणधर महाराज बाहर में वन्दन न करें, वह बाह्यव्यवहार है; अन्दर भाव में पंचपद को नमस्कार करते समय साधु को नमस्कार आ ही जाता है। कोई साधु दो घड़ी में नया भावलिंगी साधु हुआ हो, तीनकषाय का नाश करके आत्मरमणता प्रकट की हो, उस साधु को गणधरदेव, जिन्होंने कि लाखों वर्ष पहले मुनिदशा प्रकट की है, वे भी भाव से

नमस्कार करते हैं। गणधर का नमस्कार जिसको पहुँचे, उसी साधु की गणना परमेष्ठी में होती है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी को गणधर का नमस्कार नहीं पहुँचता; अतः वे परमेष्ठी में नहीं आते।

जो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रयुक्त हों, वे ही उपाध्याय हैं, अन्यथा उन्हें उपाध्याय नहीं कहते। उपाध्याय जिनकथित पदार्थ के उपदेशक हैं और आचार्यदेव दीक्षा-शिक्षा के दाता हैं। उपाध्याय जिनकथित-वीतरागकथित तत्त्व के उपदेश देने में शूर हैं – वीतराग-तत्त्व को कहने की शक्तियुक्त हैं – अन्यकथित कल्पिततत्त्व को कहने में शूर नहीं हैं। उपाध्यायमहाराज निःकांक्षभावनावाले होते हैं। परलोक में क्या होगा? उपदेश का फल जगत में आवेगा या नहीं? अन्य जीव धर्म प्राप्त करेंगे या नहीं? – ऐसी कांक्षा उपाध्याय को नहीं होती। स्वयं को विकल्प उठता है और वाणी की योग्यता के कारण उपदेश होता है; किन्तु कोई धर्म प्राप्त करे अथवा न करे, इसके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। वीतरागी शासन में उपाध्याय ऐसे ही होते हैं।

पंचपरमेष्ठी भगवान को जीव यथार्थ पहचाने, तभी उसको अपनी आत्मा की सच्ची श्रद्धा हो सकती है। जो पंचपरमेष्ठी को मानेगा, वह आम्नाय से विरुद्ध मिथ्यादृष्टियों को नहीं मान सकता। जिनके पास से ज्ञान पढ़ा जाय, उन्हें वीतराग के शासन में उपाध्याय कहा गया है। निर्ग्रन्थ मुनियों को जिन मुनि के पास पढ़ने का योग होता है – उन्हें उपाध्याय कहते हैं।

कैसे हैं उपाध्याय? अविचलित अखण्ड अद्वैत परमचिद्रूप के श्रद्धान-ज्ञान और अनुष्ठानरूप शुद्धनिश्चय स्वभावरत्नत्रयवाले उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं। आत्मा अखण्ड मात्र ज्ञानरूप है, वह अपने परमचैतन्यरूप से कभी चलित नहीं होता। ऐसे आत्मा की यथार्थ श्रद्धा, यथार्थ ज्ञान और उस परमचैतन्यरूप आत्मा में रमणतारूप अनुष्ठान-निर्विकल्प लीनतारूप चारित्र उपाध्याय परमेष्ठी के होता है। आत्मा के भानरहित केवल सम्प्रदाय-बाह्य क्रियाकाण्ड और मात्र शुभभाव में पड़ा हो – वह उपाध्याय नहीं है।

शरीर-मन-वाणी, पुण्य-पाप के भाव और गुण-गुणी के भेद से भी रहित भगवान आत्मा मात्र त्रिकाल एकरूप चैतन्यबिंब है, अविचलित अखण्ड है। ऐसे अविचलित, अभेद, एकरूप, परमचिद्रूप की श्रद्धा उपाध्याय को होती है।

उस उपाध्याय की श्रद्धा को व्यवहार कहते हैं, राग कहते हैं। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा व्यवहार है – पुण्य है। जहाँ तक सच्चे देव-शास्त्र गुरु को माने वहाँ तक शुभराग है और परमचिद्रूप अपने आत्मा की श्रद्धा करना धर्म है। आत्मार्थ की दृष्टि से पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा करना भी पुण्य है, धर्म नहीं।

अविचलित अखण्ड ज्ञानानन्द कारणपरमात्मा के श्रद्धान, ज्ञान तथा अनुष्ठानरूप शुद्धनिश्चय स्वभावरत्नत्रयवाले उपाध्याय होते हैं। त्रिकालीकारणपरमात्मा में ठहरना सच्चा चारित्र है। बाह्य क्रियाकाण्ड अथवा महाव्रतादि के विकल्प वास्तविक चारित्र नहीं है। अनुष्ठान=आचरण या चारित्र और विधान=अमल में लाना। ऐसे त्रिकाली स्वभाव में अनुष्ठानवाले जैन के उपाध्याय होते हैं – परमेश्वर होते हैं।

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों को परमेश्वर कहा जाता है। इन पाँच परमेष्ठियों के स्वरूप का यथार्थ भान होना व्यवहार कहा जाता है। ऐसे पंचपरमेष्ठी का ज्ञान भी न हो तो वहाँ व्यवहार भी नहीं होता। पंचपरमेष्ठी की ओर का विकल्प तोड़कर आत्मा का भान करना निश्चय है। यह व्यवहारचारित्र का अधिकार है, इसलिए ऐसी श्रद्धावाले को जो व्यवहार होता है – उसका यहाँ ज्ञान कराया है।

जिन्हें सिद्धदशा प्रकट करना हो, उन्हें आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान और स्वरूप रमणतारूपी शुद्धस्वभावरत्नत्रय चाहिए और इसी शुद्धरत्नत्रय से मोक्ष मिलता है। वह रत्नत्रय कैसा है? परमानन्दस्वभावी आत्मा का – नित्यानंद परमस्वभाव का – श्रद्धान-ज्ञान और उसी में रमणता करना शुद्धनिश्चयरत्नत्रय है और इसी से मोक्ष प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पुण्य से तो स्वर्ग मिलता है, आत्मा का कल्याण नहीं होता।

पुनश्च, उपाध्याय भगवान जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले जीवादि समस्त पदार्थ समूह का उपदेश देने में शूरवीर होते हैं। गणधरों के भी इन्द्र, – ऐसे श्री जिनेन्द्रभगवान के मुखकमल में से निकले हुए जीवादि नवपदार्थ, साततत्त्व, छहद्रव्य के उपदेश करने में उपाध्याय शूरवीर हैं। उपाध्याय वीतरागदेव द्वारा कथित तत्त्व का ही प्ररूपण करने में शूरवीर हैं; इसके अतिरिक्त अन्य चर्चा अथवा अन्य के द्वारा कथित बात वे नहीं करते। वीतराग के अतिरिक्त कोई योग, वेदान्त इत्यादि सत्यप्ररूपण करने में समर्थ नहीं। उपाध्याय ज्ञान-दर्शन-सुख आदि अनन्त गुणों का पिण्ड ऐसा जो जीव – उसे जीवरूप से समझाते हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल – इन पाँच द्रव्यों को अजीवरूप से जैसे हैं, वैसे समझाते हैं। पुण्य और पाप को आस्रवरूप से समझाते हैं। आत्मा में शुद्धि का प्रकट होना और अशुद्धि का रुकना – उसे संवर कहते हैं। शुद्धि की एकदेश-वृद्धि और अशुद्धि की एकदेश-हानि, उसे निर्जरा कहते हैं। आत्मा में परिपूर्ण शुद्धता होने को मोक्ष कहते हैं। इसप्रकार उपाध्याय महाराज सर्वज्ञ-वीतरागकथित जीवादि पदार्थों को समझाने में – उपदेश देने में शूरवीर होते हैं।

पुनः कैसे हैं उपाध्याय? जो समस्त परिग्रह के परित्यागस्वरूप निरंजन निजपरमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न होनेवाले परमवीतराग-सुखामृत के पान में सन्मुख होने के कारण ही निःकांक्षभावना सहित होते हैं। भगवान आत्मा में पुण्य-पाप का त्रिकाल अभाव है, संसार तो एकसमय का विकार है, उसका त्रिकाली स्वभाव में अभाव है। स्त्री, पुत्र, शरीर तो आत्मा में हैं ही नहीं, किन्तु पुण्य-पाप के विकारीभाव को, अल्पज्ञान की पर्याय को, तथा एकसमय जितनी क्षायिकपर्याय को भी आत्मस्वभाव ने पकड़ा नहीं है; ऐसे समस्त परिग्रह के त्यागस्वरूप परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न होनेवाले सुखामृत के पान में सन्मुख होने से उपाध्याय निःकांक्षभावना सहित हैं। अज्ञानी ने अज्ञान के कारण चारों तरफ मैं – शरीर मैं, स्त्री मैं, राग मैं, एकसमय के विकार जितना मैं – ऐसा मान रखा है।

ज्ञानी ने समस्त परिग्रह के परित्यागस्वरूप आत्मा के आश्रय से समस्त मिथ्या मान्यताओं का परित्याग किया है।

उपाध्याय भगवान तथा धर्मीजीव आत्मा की भावना इसप्रकार भाते हैं कि अपने त्रिकाली परमात्मतत्त्व में संवर, निर्जरा अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि एकसमय की वीतरागी पर्याय का भी परित्याग है। पुण्य के शुभविकल्प का तो परित्याग है ही, परन्तु निश्चयरत्नत्रय का भी परित्याग है। देह-वाणी जड़ है, पुण्य-पाप विकार है और वीतरागी मोक्षमार्ग एकसमय की निर्विकल्प शुद्धपर्याय है – इन सबकी पकड़ करना, वह परिग्रह है। त्रिकाली आत्मतत्त्व इस समस्त पकड़ के परित्यागस्वरूप है। दया, दानादिभाव तो विकार हैं, शरीर पर हैं; परन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन की पर्याय का अथवा केवलज्ञान की पर्याय की भी पकड़ जिसमें नहीं – ऐसे निरंजन परमात्मस्वरूप के सुखामृत में लीन होने से निःकांक्षभावना सहित है। निरंजन निज परमात्मा वह त्रिकाली ध्रुवस्वरूप है, उसकी भावना भी पर्याय है, उसकी भी पकड़ आत्मा में नहीं है।

संसार की मनवाँछित भोग विलास की सामग्री अस्थिर है, वे अनेक चेष्टाएँ करने पर भी स्थिर नहीं रहतीं, इसी प्रकार विषय अभिलाषाओं के भाव भी अनित्य हैं। भोग और भोग की इच्छाएँ इन दोनों में एकता नहीं है और नाशवान हैं इससे ज्ञानियों को भोग की अभिलाषा ही नहीं उपजती, ऐसे भ्रमपूर्ण कार्यों को तो मूर्ख ही चाहते हैं, ज्ञानी लोग तो सदा सावधान रहते हैं पर-पदार्थों से अनुराग नहीं करते, इससे ज्ञानियों को निर्वांछक ही कहा है।

– नाटक समयसार, निर्जरा द्वार, पद-33

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : कर्त्ता-कर्माधिकार में विकार का पुद्गल के साथ व्याप्य-व्यापक क्यों कहा?

उत्तर : स्वभाव दृष्टि से देखें तो विकार का कारण स्वभाव है ही नहीं, इससे विकार का निमित्त जो कर्म है, उसके साथ विकार को व्याप्य-व्यापक कहने में आता है।

प्रश्न : ज्ञानी, शुद्ध द्रव्य-गुण और शुद्ध पर्याय जितना ही आत्मा मानता है क्या?

उत्तर : ज्ञानी श्रद्धा की अपेक्षा ऐसा मानता है। ज्ञान की अपेक्षा से देखने पर राग का कर्त्तारूप परिणमित होनेवाला जीव स्वयं है – ऐसा ज्ञानी जानता है।

स्फटिकमणी में जो लाल, पीली आदि परछाई पड़ती है, वह उसकी योग्यता से होती है; तो भी स्फटिकमणी के मूल स्वभाव से देखें तो यह रंग उपाधिरूप है, मूलस्वभाव नहीं। उसीप्रकार जीव में पर्यायदृष्टि से देखें तो विकार उसके पर्याय की योग्यतारूप धर्म है, लेकिन द्रव्यार्थिकनय से देखें तो विकार उसका मूलस्वभाव नहीं है।

प्रश्न : द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है और पर्याय में अशुद्धता है, वह कर्म के कारण नहीं होती, तब अशुद्धता कहाँ से आई ?

उत्तर : द्रव्य-गुण त्रिकाल शुद्ध ही है और पर्याय में विकार होता है, वह पर्याय की उस समय की योग्यता से क्षणिक विकार होता है, कर्म से विकार नहीं होता। कर्म के निमित्त का लक्ष्य करके उस समय की योग्यता से ही विकार होता है। पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा में विकार को पर कारक की अपेक्षा ही नहीं है, ऐसा कहा है; क्योंकि विकार भी उस समय का स्वतंत्र परिणमन है।

प्रश्न : गोम्मटसार में कहा है कि कर्म के उदय से विकार होता है ?

उत्तर : विकारी अवस्था होती है, वह पर्याय की योग्यता के स्वकाल से होती है, कर्म के उदय से नहीं होती, लेकिन निमित्त के आधीन होकर विकार होता है, इस कारण वहाँ निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कर्म के उदय से होता है – ऐसा कहा है।

समयसार में भी विकार का कर्त्ता पुद्गल कर्म को कहा है; वहाँ दृष्टि का द्रव्य पर जोर वर्तता है, यह बताने के लिये विकाररूप आत्मा नहीं होती – ऐसा बताकर जो अल्प विकार है, उसका कर्त्ता पुद्गलकर्म है – ऐसा कहने में आता है।

प्रवचनसार में कहा है कि विकार का कर्त्ता जीव है। वहाँ यह विकारी परिणमन कर्म का नहीं; किन्तु जीव का ही है – ऐसा बताया है। जहाँ जिस अपेक्षा से कहा हो, वहाँ वह अपेक्षा बराबर समझना चाहिये। तब ही वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा समझ में आ सकता है।

राग से भिन्न होकर शुद्ध आत्मा का ज्ञान करना सम्यग्दर्शन है। पूजा-भक्ति, यात्रा आदि तो अनन्तबार की, लेकिन आत्मा के सम्यग्ज्ञान बिना भव का अन्त नहीं आया।

प्रश्न : यदि कर्म आत्मा को विकार नहीं कराता है तो आत्मा में होनेवाले विकार का कारण कोन है ? सम्यग्दृष्टि जीव को तो विकार करने की भावना होती नहीं, तथापि उनको भी विकार तो होता है, देखने में आता है – ऐसी स्थिति में कर्म विकार कराता है, यह मानना पड़ेगा कि नहीं ?

उत्तर : नहीं, यह मान्यता खोटी है। आत्मा को अपनी पर्याय के दोष से ही विकार होता है, कर्म विकार नहीं कराता, किन्तु उस समय पर्याय की वैसी ही योग्यता है। सम्यग्दृष्टि को राग-द्वेष करने की भावना नहीं है, तथापि राग-द्वेष होता है, उसका कारण चारित्रगुण की पर्याय की वैसी योग्यता है। राग-द्वेष की भावना नहीं है – यह तो श्रद्धा गुण की पर्याय है और राग-द्वेष होता है – यह चारित्र गुण की पर्याय है। पुरुषार्थ की निर्बलता से राग-द्वेष होता है – ऐसा कहना वह भी निमित्त का कथन है। सचमुच तो चारित्रगुण की ही उस समय की योग्यता के कारण ही राग-द्वेष होता है।

समाचार दर्शन -

ऑन लाइन संगोष्ठी -2 संपन्न

सीमंधर जिनालय भीलवाड़ा द्वारा दिनांक 4 दिसम्बर 2016 को ऑन लाइन संगोष्ठी का आयोजन डॉ. सुदीपजी जैन दिल्ली की अध्यक्षता तथा डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर के मुख्य आतिथ्य में संपन्न हुई, जिसका विषय था – 'आध्यात्मिक क्रांति का जनक समयसार'।

इस अवसर पर वक्ताओं के अन्तर्गत श्री अमितजी अरिहंत मड़ावरा, श्रीमती सरोज जैन जयपुर, डॉ. सुरभि जैन खंडवा, डॉ. अरविन्दकुमार जैन भीलवाड़ा, श्री महावीरजी चौधरी, श्रीमती सरिता चौधरी, श्री पवनजी चौधरी भीलवाड़ा, श्रीमती मालती जैन छिन्दवाड़ा, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर आदि 41 विद्वानों और साधर्मी भाई–बहिनों ने भाग लिया।

गोष्ठी का मंगलाचरण सुलभ जैन झांसी एवं चिद्रूप जैन मौ मंगलार्थी ने किया। संपूर्ण कार्यक्रम का संयोजन डॉ. सुरभि जैन खंडवा ने एवं संचालन पण्डित गणतंत्रजी शास्त्री आगरा ने किया। ऑनलाइन संगोष्ठियों के आयोजनकर्त्ता डॉ. अरविन्दकुमारजी जैन भीलवाड़ा ने सभी का आभार व्यक्त किया।

म.प्र. फैडरेशन द्वारा श्रावकाचार वर्ष

छिन्दवाड़ा (म.प्र.) : यहाँ अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन द्वारा वर्ष 2016–17 को मनाये जा रहे श्रावकाचार वर्ष के अन्तर्गत दिनांक 25 नवम्बर को प्रथम परीक्षा ली गई।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर आधारित यह परीक्षा श्री दीपकराज जैन (प्रदेश मीडिया प्रभारी) एवं डॉ. विवेक जैन (संयोजक) के निर्देशन में स्वाध्याय भवन में ली गई। इस परीक्षा में छिन्दवाड़ा, सिवनी, सिंगोड़ी आदि अनेक स्थानों से लगभग 200 साधर्मियों ने भाग लिया।

फैडरेशन द्वारा मनाये जा रहे श्रावकाचार वर्ष के अन्तर्गत छिन्दवाड़ा सहित 108 स्थानों पर नवयुवकों सहित सभी साधर्मीजन रत्नकरण्ड श्रावकाचार का नियमितरूप से स्वाध्याय शिक्षण कक्षाओं के माध्यम से कर रहे हैं। छिन्दवाड़ा में इसकी कक्षा प्रतिदिन रात्रि 9.30 बजे से स्वाध्याय भवन गोलगंज में संचालित की जाती है। फैडरेशन के प्रांतीय अध्यक्ष श्री विजयजी बड़जात्या इन्दौर ने बताया कि श्रावकाचार वर्ष में पूरे प्रदेश से दस हजार परीक्षार्थी भाग ले रहे हैं, जिनमें सबसे अधिक विद्यार्थी छिन्दवाड़ा जिले के हैं।

वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न

खनियांधाना (म.प्र.) : यहाँ चेतनबाग स्थित नंदीश्वर जिनालय में दिनांक 7 से 16 नवम्बर तक श्री तीन लोक मण्डल विधान एवं वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द संपन्न हुआ।

इस अवसर पर ब्र. सुमतप्रकाशजी, ब्र. राकेशजी बीना, पण्डित संजयजी पुजारी, पण्डित सुदीपजी बीना, पण्डित शिखरचंदजी छिन्दवाड़ा आदि के प्रवचनों का लाभ मिला।

दिनांक 16 नवम्बर को श्री जिनेन्द्र रथयात्रा महोत्सव द्वारा विशाल शोभायात्रा निकाली गई एवं नवीन जिनबिम्बों को वेदी पर विराजमान किया गया। विधि–विधान के समस्त कार्य ब्र. महेन्द्रजी शास्त्री इन्दौर, पण्डित अजितजी शास्त्री अलवर, पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर, पण्डित विवेकजी शास्त्री दिल्ली, पण्डित मुकेशजी कोठादार एवं स्थानीय विद्वानों द्वारा संपन्न हुये।

– सुनील जैन 'सरल', खनियांधाना

श्री टोडरमल जैन मुक्त विद्यापीठ के छात्र ध्यान दें

पत्राचार पाठ्यक्रम की दिसम्बर 2016 के अंतिम सप्ताह में होने वाली द्वितीय सेमेस्टर की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम का विवरण निम्नानुसार है; परीक्षार्थी इसी के अनुसार तैयारी करें –

द्विवर्षीय विशारद परीक्षा की सैकेण्ड सेमेस्टर परीक्षा

प्रथम वर्ष – 1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 2
2. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 3

द्वितीय वर्ष – 1. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 2
2. धर्म के दशलक्षण + भक्तामर स्तोत्र

त्रिवर्षीय सिद्धांत विशारद परीक्षा की सैकेण्ड सेमेस्टर परीक्षा

प्रथम वर्ष – 1. रत्नकरण्ड श्रावकाचार
2. रामकहानी + आप कुछ भी कहो

द्वितीय वर्ष – 1. मोक्षमार्गप्रकाशक पूर्वार्द्ध (1 से 5 अध्याय)
2. नयचक्र–पूर्वार्द्ध (निश्चय व्यवहार)
3. हरिवंशकथा + भ.महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ

तृतीय वर्ष – 1. मोक्षमार्गप्रकाशक उत्तरार्द्ध (6 से 9 अध्याय)
2. नयचक्र–उत्तरार्द्ध (द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय प्रकरण)
3. शलाका पुरुष (सम्पूर्ण)

नोट : सभी परीक्षार्थियों को उनके प्रश्नपत्र केन्द्र/उनके पते पर दिसम्बर के तृतीय सप्ताह तक डाक द्वारा भेज दिये जायेंगे। यदि 25 दिसम्बर तक भी पेपर न मिले तो जयपुर कार्यालय से संपर्क करें।

आवश्यक सूचना

क्या आप जैन अध्यात्म का व्यवस्थित अध्ययन करना चाहते हैं ?

क्या आप हमेशा सोचते हैं कि काश आप भी पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट में पांच वर्ष नियमित अध्ययन कर गुरुओं के संरक्षण में जैनदर्शन के विशेषज्ञ विद्वान बन पाते ?

अब यह 'परमागम ऑनर्स' कोर्स के माध्यम से विश्व में किसी भी शहर से घर बैठे ही संभव है। वीतराग विज्ञान विद्यापीठ बोर्ड द्वारा प्रमाणित इस पाठ्यक्रम के मुख्य बिन्दु -

(1) जयपुर से संचालित शास्त्री पाठ्यक्रम पर आधारित है।

(2) 40 से अधिक धार्मिक ग्रंथ 5 वर्ष में सप्ताह में 2 घंटे की कक्षाओं के माध्यम से सिखाये जाते हैं।

(3) वीतराग विज्ञान पाठमालाओं से लेकर समयसारादि ग्रंथों तक सभी अनुयोगों का व्यवस्थित अध्ययन।

(4) प्रत्येक वर्ष दो सेमेस्टरों में विभाजित (प्रथम परीक्षा-जुलाई में एवं द्वितीय परीक्षा-जनवरी में)।

(5) ओपन बुक एक्जाम अर्थात् परीक्षा में किताब खोलने की अनुमति है।

(6) विश्व के किसी भी कोने से टेलिकॉन्फ्रेन्स के द्वारा कक्षायें, जिनको रिकॉर्ड करके शेयर भी किया जाता है।

(7) कोर्स फीस 500 रुपये प्रति सेमेस्टर।

(8) अभी 2016 में मुम्बई, सूरत, अमेरिका और सिंगापुर में बैच चल रहे हैं, जिसमें 250 से अधिक छात्र लाभ ले रहे हैं।

(9) अगला बैच शीघ्र ही प्रारम्भ किया जा रहा है।

(10) हर उम्र और वर्ग के आत्मार्थी आमंत्रित हैं।

एडमिशन लेने के लिये इस लिंक पर फार्म भरें - https://goo.gl/forms/PLejJHR8R XVB0n1E2 विशेष जानकारी के लिये संपर्क करें - parmagamhonours@gmail.com या कॉल करें - 9833067741 स्वानुभूति जैन (सोम.-शनि. सायं 5.30-7.00 के बीच)

बाल संस्कार शिविर संपन्न

बण्डा-सागर (म.प्र.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के तत्त्वावधान में दिनांक 26 अक्टूबर से 2 नवम्बर तक सातवाँ महावीर संदेश जैन बाल संस्कार शिविर आयोजित किया गया।

इस अवसर पर टोडरमल महाविद्यालय जयपुर, धरसेन महाविद्यालय कोटा एवं अकलंक महाविद्यालय बांसवाड़ा के 25 शास्त्री विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ। मध्यप्रदेश के बण्डा, कर्रापुर, बिनैका, बिजरी, बरा आदि ग्रामों में लगाये गये इस शिविर में लगभग 250-300 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया। इस शिविर में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का विशेष आर्थिक सहयोग रहा। सभी स्थानों पर शिविर की बहुत प्रशंसा व सराहना हुई।

शोक समाचार

(1) मुम्बई निवासी श्रीमती वसुमतिबेन का दिनांक 4 दिसम्बर को शांतपरिणामों पूर्वक देहावसान हो गया। आप अत्यंत स्वाध्यायी, सहनशील, सरल एवं परोपकारी थीं।

(2) श्री कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल ट्रस्ट नागपुर के भूतपूर्व अध्यक्ष स्व.श्री शिखरचंदजी मोदी की धर्मपत्नी **श्रीमती गौरादेवी मोदी** का 84 की उम्र में दिनांक 9 दिसम्बर को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप अत्यंत धर्मपरायण एवं स्वाध्यायी महिला थीं। नागपुर मुमुक्षु मण्डल की स्थापना से लेकर इसकी प्रत्येक गतिविधियों में आपके परिवार का हमेशा योगदान रहता है।

(3) चैतन्यधाम-अहमदाबाद (गुज.) के मंत्री श्री प्रतीकभाई के पिताजी **श्री चंद्रकांत डाह्यालाल शाह** का दिनांक 3 दिसम्बर 2016 को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया।

(4) बारां (राज.) निवासी श्री नरेन्द्रकुमार पोरवाल का दिनांक 7 दिसम्बर को 64 वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। ज्ञातव्य है कि आप टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक श्री संजीवजी शास्त्री बारां के पिताजी थे।

दिवंगत आत्मायें चतुर्गति के दुःखों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।

जैन इतिहास पर संगोष्ठी संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ जौहरी बाजार स्थित ऐतिहासिक दिगम्बर जैन तेरापंथी बड़े मन्दिर में टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा रविवार, दिनांक 27 नवम्बर 2016 को **'जैनधर्म का प्राचीन इतिहास'** विषय पर विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया।

गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. बी.एल.सेठी ने की। मुख्य अतिथि श्री विनयजी पापड़ीवाल ने टोडरमल स्मारक के निर्माण का इतिहास बताते हुए उसे तेरापंथी बड़े मंदिर की एक शाखा बताया। विशिष्ट अतिथि के रूप में वयोवृद्ध विद्वान श्री प्रसन्नकुमारजी सेठी ने अपनी सुन्दर काव्य-रचना प्रस्तुत की। इस अवसर पर डॉ. संजीवकुमारजी गोधा ने इस ऐतिहासिक दिगम्बर जैन तेरापंथी बड़े मंदिर के ऐतिहासिक गौरव को बताया।

टोडरमल महाविद्यालय के उपप्राचार्य पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने समागत सभी अतिथियों का आभार प्रदर्शन किया। इस अवसर पर डॉ. दीपकजी वैद्य, श्रीमती कमला भारिल्ल, ब्र. विमलाबेन के अतिरिक्त श्री ताराचंदजी सौगानी भी मंचासीन थे।

प्राचीन जैन इतिहास पर आयोजित इस गोष्ठी में उपाध्याय वर्ग से सजल जैन नोहटा (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं शास्त्री वर्ग से श्रुति जैन जयपुर (शास्त्री प्रथम वर्ष) श्रेष्ठ वक्ता चुने गये।

गोष्ठी का मंगलाचरण यश जैन गुना ने एवं संचालन चर्चित जैन एवं स्पर्श जैन ने किया।

साप्ताहिक गोष्ठी संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा साप्ताहिक गोष्ठियों की शृंखला में दिनांक 4 दिसम्बर को **'दर्शनशास्त्र का परिचय'** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया।

गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. अनिल जैन (प्राचार्य-दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, सांगानेर) एवं मुख्य अतिथि डॉ. हितेन्द्र जैन (जैनदर्शन व्याख्याता-दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, सांगानेर) थे।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में प्रतीक हरावत रिसोड एवं संयम जैन तिगोडा चुने गये। गोष्ठी का मंगलाचरण संभव जैन दिल्ली ने एवं संचालन प्रशांत पाटील व शुभम जैन ने किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र–श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में बन रहे मेरु का दृश्य (सहयोगदाता-श्री रसिकलाल माणिकचंद धारीवाल, पूना)

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2015-17*

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में पत्थर के कार्य होने के पूर्व डल रहे आर.सी.सी. वर्क का दृश्य

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.

द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**